

कर्म का सिद्धान्त

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरु देवो महेश्वरः।

गुरु साक्षात् परब्रह्मः तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

संत तुलसी दास जी ने कर्म के सिद्धान्त के विषय में लिखा है:—

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।

जो जस करहिं सो तस फल चाखा।।

ऐसी मान्यता है कि यह सिद्धान्त अनादि काल से बिना किसी अपवाद के और पूरी दृढ़ता के साथ पालन किया जा रहा है। जब से यह सृष्टि प्रारम्भ हुई तभी से यह सिद्धान्त लागू है बल्कि उससे भी पहले से क्योंकि सृष्टि का प्रारम्भ भी तो इसी सिद्धान्त की देन है। यह सिद्धान्त आगे भी युगों-युगों तक प्रभावी रहेगा क्योंकि इसी सिद्धान्त के माध्यम से सारी सृष्टि का परिचालन होता है, नियन्त्रण होता है। इसका कोई अपवाद नहीं है, चाहे वह स्वयं मालिक का अवतार ही क्यों न हो।

इस सिद्धान्त की अनेक विशेषताओं में से एक विशेषता यह है कि इसके अनुसार अच्छे और बुरे कर्मों का फल अलग-अलग भोगना पड़ता है अर्थात् कर्म फल प्राप्ति में किसी भी प्रकार का समायोजन (जोड़-घटाव) नहीं होता। कर्म के सिद्धान्त के अन्तर्गत शारीरिक कर्मों की ही गणना नहीं होती अपितु मानसिक कर्म अर्थात् हमारे विचार भी इस सिद्धान्त की परीधि में आते हैं। सामान्यतः कर्म का सिद्धान्त निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है:—

1. क्रिया और प्रतिक्रिया— यह तो आधुनिक विज्ञान भी मानता है कि जहाँ भी कोई क्रिया होगी इस सृष्टि में उसकी प्रतिक्रिया अवश्य होगी, चाहे कहीं भी हो और किसी भी रूप में हो, मगर होगी जरूर। यदि हम हवा में भी हाथ हिलाते हैं तो इसकी प्रतिक्रिया पूरे ब्रह्माण्ड में होती है।
2. कारण और प्रभाव— कोई भी क्रिया बिना कारण के नहीं होती और जहाँ कारण उपस्थित होता है उसका प्रभाव भी अवश्य होता है। प्रभाव से बचने के लिये कारण को हटाना ही पड़ता है।

3. कर्म और भाग्य फल— जो भी कर्म मनुष्य करता है उससे उसका भाग्य फल निर्धारित होता है। बस यहीं से कर्म सिद्धान्त प्रभावी होता है।

प्रायः देखा जाता है कि सज्जन व्यक्ति जो धर्म और सत्यता के मार्ग पर चलते हैं वे गरीब, दुखी और कष्ट पूर्ण जीवन में रहते हैं परन्तु इसके विपरीत चारसौबीसी करने वाले, झूठे और भ्रष्टाचारी ऐशो आराम का जीवन जीते दिखाई पड़ते हैं। इस कारण कभी-कभी ईश्वर के निष्पक्ष होने पर भी सवाल खड़ा हो जाता है और ईश्वर के ऊपर से विश्वास उठने लगता है। परन्तु ऐसा भ्रम इस सिद्धान्त की पूरी समझ न होने के कारण होता है। कर्म तीन प्रकार के होते हैं:—

1. क्रियमाण कर्म— जो भी कर्म हम वर्तमान में स्वाभाविक रूप से करते हैं और जो नित्य कर्म की श्रेणी में आते हैं जिनकी प्रतिक्रिया वर्तमान में ही मिल जाती है, उन्हें क्रियमाण कर्म कहते हैं। जैसे भोजन करना, पानी पीना, स्नान करना, पलक झपकना, सांस लेना या इसी प्रकार का कोई भी कर्म करना। तात्पर्य यह है कि आपने कारण प्रस्तुत किया और उसका प्रभाव तुरन्त सामने आ गया। इन कर्मों को करने की मनुष्य को स्वतन्त्रता होती है कि वह इन कर्मों को अपनी इच्छा या उपलब्ध विकल्पों में से कोई विकल्प चुन सकता है। लेकिन एक बार उस विकल्प के अनुसार कर्म करने के बाद उसके फल पर हमारा कोई अधिकार नहीं रहता है।

2. संचित कर्म— जो भी कर्म हम वर्तमान में करते हैं और जिनका प्रतिफल या प्रतिक्रिया तुरन्त न मिलकर विलम्ब से मिलती है वे संचित कर्म की श्रेणी में आते हैं। जैसे किसी को सताया या गाली दी, दवाई ली, आनाज बोया, किसी को धोखा दिया या कोई धर्म का काम किया तो ऐसे कर्मों का प्रतिफल मिलने में कई माह, कई वर्ष और कई जन्म भी लग सकते हैं। इनमें से कुछ सामान्य कर्मों का फल तो वर्तमान जीवन में ही मिल जाता है और कुछ कर्मों का (जिनके प्रति हमारे मन में जरा सी भी आसक्ति या वासना शेष रह जाती है) अगले जन्म या अगले अनेक जन्मों में भोगना पड़ता है। परन्तु जब तक प्रत्येक

कर्म का प्रतिफल, प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया, प्रत्येक कारण का प्रभाव पूरा नहीं हो जाता, वह नष्ट नहीं होता। इसकी कोई समय सीमा निश्चित नहीं है। संचित कर्म जब तक पक कर प्रारब्ध कर्म नहीं बन जाते तब तक कर्ता को इनके प्रतिफल का जन्मजन्मान्तरों तक इंतजार करना पड़ता है।

3. प्रारब्ध कर्म— असंख्य जन्मों के संचित कर्म चाहे वे अच्छे हों या बुरे जब एकत्र होकर भोगने योग्य हो जाते हैं तो प्रकृति जीव को उन्हें भोगने के लिये एक शरीर की रचना करती है (जिसे जन्म कहते हैं) और जिन-जिन जीवों से उन कर्मों को भोगने का सम्बन्ध रहता है उन्हें भी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों में समकालीन समय में ही जन्म लेना पड़ता है। इसके साथ ही जिस प्रकार की वासना जीव के अन्दर मृत्यु के समय तीव्र होती है उस के अनुसार उन कर्मों को भोगने के लिये नये शरीर की रचना होती है और मृत्यु के समय वासना भी निश्चित रूप से उसी प्रकार की रहती है जिस प्रकार के कर्म कोई जीव जीवन भर करता है। सभी संचित कर्मों का भुगतान एक ही जन्म में नहीं हो पाता। इसलिये जीव को बार-बार जन्म लेना पड़ता है। **कहा जाता है कि कर्म की गति इतनी गहन है (गहनो कर्मणागति) कि एक वासना की पूर्ति के लिये भी कई जन्म लेने पड़ सकते हैं और जब हमारी असंख्य वासनाएँ होती हैं तो जन्म भी असंख्य हों तो क्या आश्चर्य है।**

कर्म के सिद्धान्त के विषय में एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि मनुष्य योनी के अलावा सभी योनियां भोग योनियां कहलाती हैं अर्थात् अन्य योनियों में जीव के नये कर्म नहीं बनते हैं। परन्तु मनुष्य योनी कर्म योनी कहलाती है; इस योनी में मनुष्य को कर्म करने का भी अधिकार प्राप्त है अर्थात् प्रारब्ध कर्म भोगने के साथ-साथ मनुष्य नये कर्मों का भी निर्माण करता जाता है। इस प्रकार कर्म का अन्तहीन सिलसिला चलता ही रहता है। इसलिये भक्त कहता है—

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।

यह संसारे खलु दुस्तारे कृप्या पारे पाहि मुरारे।।

इस प्रकार कर्म के जाल में जो एक बार फंस गया बस वह फंस गया। इससे वचाव बहुत कठिन है। हाँ कर्म करने से पहले जीव को स्वतन्त्रता है कि वह कर्म करे या न करे परन्तु कर्म करने के बाद उसके फल भोगने में वह परतन्त्र है। आप मूली खायें या ना खायें इसके लिये आप स्वतन्त्र हैं लेकिन खाने के बाद उसकी प्रतिक्रिया पाने में आप परतन्त्र हैं। इसीलिये मनुष्य को बुद्धि का हथियार दिया गया है कि वह कर्म करने से पहले विवेक से काम ले, यह बुद्धि अन्य जीवों को नहीं दी गई है। मानवेतर जीवों का सम्बन्ध केवल मनोमय कोष तक है जबकि मनुष्य की पहुंच तो ज्ञानमय और आनन्दमय कोष तक है। इसीलिये कहते हैं कि मनुष्य योनी मोक्ष का द्वार है अर्थात् मनुष्य इस योनी में चाहे तो आवागमन के चक्र को तोड़ भी सकता है वरना तो ये बेडियां और बंधन मजबूत ही होते जाते हैं। इसके लिये किसी को भी दोष नहीं दिया जा सकता, भगवान को भी नहीं और भाग्य को भी नहीं क्योंकि यह विकल्प हमने अपनी मर्जी से स्वयं चुना है।

इस कर्म के सिद्धान्त से न कोई आज तक बच पाया है और न बच पायेगा। जो व्यक्ति कर्मों के प्रभाव को कम करने के लिये जप, तप या तन्त्र, मन्त्र का सहारा लेते हैं उससे कर्मों का प्रभाव समाप्त नहीं होता अपितु कुछ समय के लिये टल जाता है और बाद में जब उस तन्त्र, मन्त्र का प्रभाव कम हो जाता है तो कर्म का फल और भी भयंकर रूप में भोगना पड़ता है। राजा परीक्षित जो अर्जुन का पोता था (अर्जुन को भगवान कृष्ण ने महाभारत के युद्ध में स्वयं गीता सुनाई थी) जब उसने एक ऋषि के गले में मरा हुआ सर्प डाला और ऋषि पुत्र ने जब उसे श्राप दिया तो उसके श्राप को कम करने के लिये कृष्ण भगवान ने भी कोई मदद नहीं की थी और परीक्षित को अपने कर्म का भोगना पड़ा था।

जीव को अच्छे और बुरे कर्मों का फल पूर्व निर्धारित क्रम के अनुसार ही भोगना पड़ता है। इस क्रम का निर्धारण भी जीव के वश में नहीं है। जैसे एक किसान अपनी उपज एक बड़ी टंकी में डालता जाता है और समय-समय पर अपनी आवश्यकतानुसार नीचे की टोंटी से निकालता है तो उसे उसकी इच्छा के अनुसार अनाज नहीं निकलेगा अपितु जिस क्रम में उसमें अनाज भरा है

उसी क्रम में निकलेगा। यही बात कर्मों के ऊपर भी लागू होती है। आज हमें जो कुछ भी मिल रहा है यह आज के कर्मों का फल नहीं है। इसमें भी यह बात और समझ लेनी चाहिये कि जब अच्छे कर्मों का सिलसिला चलता है तो बीच-बीच में छोटे-मोटे बुरे कर्मों का प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता अर्थात् उसका प्रभाव महसूस नहीं होता। इसी प्रकार जब बुरे कर्मों का सिलसिला चलता है तो छोटे-मोटे अच्छे कर्मों का प्रभाव नजर नहीं आता। जैसे बहुत मुसीबत के समय दो-चार या दस-बीस रूपये किसी ने दे दिये तो यह किसी अच्छे कर्म का ही फल है। इसलिये कबीर साहब जी कहते हैं **"कबीरा तेरा पुण्य का जब लग है भंडार, तब तक अवगुण माफ हैं करो गुनाह हजार।"**

ईश्वर निष्पक्ष है। चाहे कोई पूजा-पाठ करे या ईश्वर को गाली दे या अत्याचार करे, प्रारब्ध कर्मों के भुगतान में किसी भी किस्म की न कमी होगी और न बढ़ोतरी ही होगी। ये कर्म उसके संचित कर्मों को बढ़ाते जायेंगे और समय आने पर ही फलित होंगे अर्थात् ये कर्म ही हमारे प्रारब्ध बन कर या भाग्य बन कर भविष्य में सामने आयेंगे।

कर्म का सिद्धान्त इस जगत की रचना में सहायक तीन गुण—सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण साथ मिलकर कर्मों के प्रतिफल का निर्धारण करते हैं। एक व्यक्ति अपने बुरे प्रारब्ध को भोगते समय यदि सात्विक गुण के प्रभाव में आ जाय और शुद्ध विचार और श्रद्धा से उसे प्रभु का प्रसाद समझ कर भोग ले तो वह इसे बंधन काटने का साधन बना लेगा। यदि उस समय वह राजसिक गुण के प्रभाव में आ जाय तो वह स्वार्थी बन कर अपने कर्म को बंधन का कारण बना लेगा और यदि उस समय वह तामसिक गुण के प्रभाव में आ गया तो उस कर्म को इतना निकृष्ट बना डालेगा कि अगले कई जन्मों तक उसका बोझ ढोना पड़ेगा।

इसको एक उदाहरण से स्पष्ट करते हैं— माना कि एक आदमी को किसी प्रारब्ध कर्म की सजा एक वक्त का भोजन न मिलना तय है। यदि वह व्यक्ति उस समय सतोगुण के प्रभाव में है तो वह उस दिन उपवास का निश्चय

करेगा और खुशी-खुशी उस कर्मभोग को बंधन काटने का हथियार बना लेगा। यदि वह उस समय राजसिक गुण के प्रभाव में है तो वह स्वार्थ वश उस दिन इतना व्यस्त रहेगा कि उसे कि उसे एक समय का खाना मिलेगा ही नहीं। यदि काश! वह तमोगुण के प्रभाव में होगा तो उस दिन घर में लड़ाई-झगड़ा करेगा और दफ्तर में भी बुरा व्यवहार करेगा जिससे उसको स्वयं को भी एक समय का भोजन नहीं मिलेगा और साथ ही उनको भी नहीं मिलेगा जिनके साथ उसने दुर्व्यवहार किया है। इस प्रकार इस कर्म को भोगते समय उसने और भी भयंकर परिणाम वाले कर्म कर डाले।

वर्तमान जीवन में हमें प्रारब्ध कर्मों को भोगने के लिये नाप-तौल कर वातावरण, परिस्थितियां, घर-परिवार और अन्य सुविधाएँ प्रयाप्त मात्रा में पहले से ही प्रदान की हुई होती हैं, इनमें किसी प्रकार का परिवर्तन करना या कम ज्यादा करना हमारे वश की बात नहीं है। प्रायः कहा जाता है कि बच्चे के जन्म के छठे दिन विधाता आता है और उसका भाग्य लिखता है। यह अज्ञान है क्योंकि भाग्य तो पहले ही लिखा जा चुका होता है तभी तो उसका जन्म होता है। जिन-जिन व्यक्तियों से हमें पूर्व जन्म का हिसाब-किताब चुकता करना होता है उनका भी समकालीन जन्म होता है और उचित समय पर सम्पर्क में आते हैं और अपने कर्मों का निपटारा करते हैं।

प्रत्येक को उतना ही मिलता है जितना उसके भाग्य में होता है और तभी मिलता है जब उसका समय आता है। कुछ व्यक्ति इस बात पर संदेह करके कह सकते हैं कि जब भाग्य के अनुसार ही मिलना है तो हम पुरुषार्थ क्यों करें? इसका सीधा सा उत्तर यह है कि मनुष्य योनी कर्म योनी है अर्थात् इसमें हमें प्रारब्ध कर्मों को भोगने के साथ-साथ नये कर्म करने की भी स्वतन्त्रता है। हम वर्तमान में जो कर्म करते हैं वे हमारा भविष्य निर्माण करते हैं, उनका फल हमें अगले जन्मों में अधिक मिलता है। हम यह सोच कर संतोष कर लेते हैं कि आज हमें जो कुछ मिल रहा है वह हमारे इस जन्म के कर्मों का परिणाम है जबकि आज जो कुछ भी हमें मिल रहा है वह तो पूर्व निर्धारित था। इसलिये हमें

वर्तमान में सभी कर्म निष्ठा, सत्य और लग्न से करने चाहिए।

सुख या प्रसन्नता अधिक धन मिलने से या अच्छा परिवार और अच्छा वातावरण मिलने से प्राप्त नहीं होती क्योंकि सुख या प्रसन्नता तो अन्तरात्मा के संतुष्ट होने पर ही प्राप्त होती है। इतिहास गवाह है कि बहुत से व्यक्ति जो सब प्रकार साधन सम्पन्न थे अन्दर से अप्रसन्न थे और मजबूर होकर उन्हें आत्म हत्या करनी पड़ी। इसका कारण यह है कि ऐसे व्यक्ति आत्मा की संतुष्टि के लिये कुछ नहीं करते। आत्मा वैसे तो सब द्वन्द्वों और विकारों से रहित है परन्तु कर्मों के वश और मन के प्रभाव में आकर में आकर जब वह अपने को कर्त्ता मान लेती है तो जीव बनकर दुख-सुख सहती है और आवागमन में फंस जाती है।

प्रारब्ध और पुरुषार्थ को और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिये हम कह सकते हैं कि पुराने क्रियमाण कर्म या पुराना पुरुषार्थ हमारा आज का प्रारब्ध है और आज के क्रियमाण कर्म या आज का पुरुषार्थ हमारा कल का प्रारब्ध बनेगा। इससे स्पष्ट है कि हमारे आज के पुरुषार्थ से हमारा भविष्य बनता है। इस प्रकार प्रारब्ध और पुरुषार्थ परस्पर सहयोगी हैं, एक दूसरे के विरोधी नहीं। अतः वर्तमान में हम जो भी कर्म करें उसे नया कर्म समझ कर करें और करने के पश्चात् उसके फल को ईश्वराधीन कर दें तो हम सुखी रह सकते हैं।

सनातन धर्म में मनुष्य को संसार में रहने के लिये चार प्रकार के आश्रम नियत किये गये हैं और उन्हीं के अनुसार कर्मों का वर्गीकरण भी किया गया है। ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम। इन आश्रमों में होने वाले कर्म क्रमशः अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष होते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम में धन कमाने के लिये शिक्षा और दीक्षा दी जाती है। गृहस्थ आश्रम में कामनाओं या इच्छाओं को पूरा करने के लिये कर्म करने पड़ते हैं। वानप्रस्थ आश्रम में धर्म अर्थात् दूसरों की सेवा करने का अवसर मिलता है और उसी से सम्बन्धित कर्म करने पड़ते हैं। जीवन भर उपरोक्त कर्म करने के बाद भी मनुष्य के अन्दर एक खालीपन सा महसूस होता है क्योंकि उसे बहिर्मुखी कर्म संतुष्टि प्रदान नहीं कर सकते। अतः सन्यास आश्रम में वह अन्तर्मुखी कर्म करने अर्थात्

आत्मज्ञान प्राप्त करने की ओर कदम बढ़ाता है।

इस संसार में प्रकृति मनुष्य से अर्थ और काम सम्बन्धी कर्म तो प्रारब्ध के अनुसार स्वयं करा ही लेती है चाहे उनके करने में आपकी रुचि हो या न हो परन्तु धर्म और मोक्ष से सम्बन्धित कर्म तो मनुष्य को स्वयं ही रुचि लेकर करने पड़ते हैं; इनको प्रारब्ध के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को कहते हैं "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"—इसका भी कुछ लोग प्रायः गलत अर्थ लगाते हैं। चोर-उच्चके कहते हैं कि खूब चोरी-चकारी करो और फल की चिन्ता मत करो क्योंकि भगवान कृष्ण ऐसा कहते हैं। जबकि इसका सही अर्थ यह है कि आपको कर्म करने की तो स्वतन्त्रता है परन्तु उसके परिणाम पर आपका कोई हस्तक्षेप नहीं है अर्थात् उसका परिणाम आपकी इच्छानुसार मिले यह जरूरी नहीं है। इसका एक सरल अर्थ यह भी है कि क्रिया पर तो आपका अधिकार है परन्तु प्रतिक्रिया पर नहीं।

कर्म के सिद्धान्त की गति अति गहन है, कोई भी निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि अमुक कर्म का अमुक परिणाम होगा या अमुक कर्म उचित है और अमुक कर्म अनुचित है। एक कर्म एक काल में, एक व्यक्ति के लिये, एक देश में उचित हो सकता है वही कर्म भिन्न परिस्थितियों में अनुचित हो सकता है। कर्म किये बिना हम एक पल भी नहीं रह सकते और कर्म करने के बाद चाहे वह अच्छा हो या बुरा उसके प्रभाव से हम बच नहीं सकते। बुरा कर्म जहाँ लोहे की जंजीर में बांधता है, अच्छा कर्म सोने की जंजीर में बांधता है अर्थात् दोनों प्रकार के कर्म बंधन का कारण बनते हैं।

कहते हैं कि प्रारब्ध कर्मों के परिणाम भुगतने से पहले कोई भी इस शरीर को छोड़ नहीं सकता, चाहे वह कितना ही प्रार्थना करे, कितना ही बीमार हो या उसके सगे-सम्बन्धी भी क्यों न चाहें। इसी प्रकार जब किसी की मृत्यु आती है तो वह एक पल भी ज्यादा नहीं जी सकता चाहे वह कितना ही प्रयास करे। कोई व्यक्ति चाहे ईश्वर की प्रार्थना करे या ईश्वर को गाली दे उसके प्रारब्ध कर्मों के भुगतान में कोई कमी या बढ़ोतरी नहीं हो सकती।

तो ऐसी हालत में मनुष्य क्या करे? इस सम्बन्ध में संत कहते हैं कि निम्न प्रकार के कर्म बंधन में नहीं बांधते—

1. बचपन में अज्ञानता में हुये बालकों द्वारा कर्म
2. पागलों द्वारा बेहोशी में किये गये कर्म
3. पशु-पक्षियों द्वारा किये गये कर्म
4. बिना स्वार्थ, बिना लोभ, बिना मोह, बिना अहंकार के द्वारा किये गये निष्काम कर्म जो सिर्फ निमित्त मात्र बन कर किये जाते हैं।

जब कोई सच्चा जिज्ञासु किसी सतगुरु के मार्ग दर्शन में प्रेम, श्रद्धा और विश्वास के साथ साधना करता है (साधना का अर्थ है मन को साधना) तो सतगुरु शिष्य से कहता है कि अब तक जो हुआ सो हुआ आगे कोई बुरा काम न करो, न बुरे कर्मों की वासना मन में रहने दो। इस प्रकार वह पुराने क्रियमाण कर्मों को बखस देते हैं अर्थात् वे खाते में लिखे ही नहीं जाते। इसके बाद संचित कर्मों की बारी आती है। जब शिष्य गुरु के मार्ग निर्देशन में सुमरिन ध्यान करता रहता है तो उसका मन धीरे-धीरे एकाग्र होने लगता है, पवित्र होने लगता है तब उसकी आत्मा जो अपने को शरीर एवं मन मानकर दुखी रहती है वह मन के चंगुल से धीरे-धीरे आजाद होने लगती है। फिर उस शिष्य को अंतर में प्रकाश और शब्द प्रकट होने लगता है। प्रकाश और शब्द के अभ्यास से संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं अर्थात् उनका प्रभाव नष्ट हो जाता है, वे फलीभूत ही नहीं होते। सतगुरु प्रारब्ध कर्मों को नहीं छेड़ता क्योंकि उन कर्मों को भुगतने के लिये ही तो यह शरीर मिला है।

संचित कर्मों के प्रभाव को नष्ट करना कोई काल्पनिक नहीं है अपितु यह अध्यात्म विज्ञान पर आधारित है। कर्मों का प्रभाव आत्मा को तभी तक सहना पड़ता है जब तक वह शरीर और मन को "मैं" मानती है और जब आत्मा इनको छोड़कर इनसे परे चली जाती है तो कर्म के प्रभाव से बच जाती है। इसलिये आदि संत कबीर साहब कहते हैं—

जाप मरे अजपा मरे अनहद भी मर जाये।

सुरत समानी देह में ताको काल न खाये।।

सृष्टि के विकास क्रम का यह नियम है कि जब भी कोई महान आत्मा या संत इस धरती पर अवतरित होता है तो उससे लाभ प्राप्त करने वाली जिज्ञासु आत्माओं को भी समकालीन अवस्थाओं में उत्पन्न करने की व्यवस्था की जाती है। इतना सब कुछ प्राकृतिक प्रबंध होने के बावजूद कुछ चुनी हुई आत्माएँ ही इस अवसर का लाभ उठा पाती हैं शेष इससे वंचित रह जाती हैं। इसका कारण है कि काल भगवान या माया जो इस सृष्टि के सभी जीवों का ठाकुर है वह अपने आधिपत्य से इन आत्माओं को मुक्त ही नहीं होने देता। वह ऐसी चाल चलता है कि भ्रमित आत्माओं को संतो/सतगुरु के वचनों पर विश्वास ही नहीं हो पाता और बिना श्रद्धा-विश्वास के तो कोई भी काम नहीं बनता— न भौतिक जगत में, न मानसिक जगत में और न ही आत्मिक जगत में। इसलिये सभी जीव (यहाँ तक की ज्ञानी, जपी, तपी, योगी, सन्यासी भी) चौरासी के चक्र में फंसे रहते हैं।

जो जीव गुरु द्वारा उसके प्रति कहे हुए शब्द या वचन को अंगीकार कर लेता है और जीते-जी उस पर मर मिटता है तो सतगुरु भी उसका आवागमन समाप्त कर देते हैं अर्थात् इसी जीवन में ऐसे जीव को चश्में-वहादत/जीवन मुक्ति की अवस्था का अनुभव करा देते हैं। ऐसे संत महात्मा और ऐसे जीव हर युग में बार-बार इसलिये प्रगट होते हैं ताकी वे दूसरों के लिये उदाहरण प्रस्तुत कर सकें और उन्हें भी सत्य के मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित कर सकें। दूसरा कारण यह भी है कि मनुष्य के चोले में आकर ही संसार के कष्टों का अनुभव होता है और इसी चोले में उन कष्टों से निजात/छुटकारा पाने की युक्ति भी मिलती है। इसलिये देवता भी मनुष्य चोले को तरसते हैं। यह जीव जिसे राजेश कहते हैं अपने गुरु की सेवा करना चाहता है परन्तु इसे यह मालूम नहीं कि इसे सेवा कैसे करनी है। अतः यह मनमुख अपने गुरु की यादों के सहारे ही जीवन के कुछ पल ऐसे ही बिता रहा है। अगर इसके स्वार्थ सिद्धि के प्रयास में अन्य किसी जीव का कल्याण हो जाता है तो इसमें भी गुरु कृपा ही मुख्य है।

मालिक सबका कल्याण करे







